

प्राक्कथन

आनंदका क्षण आता हैं, जाता है किन्तु जाते जाते दूसरे क्षणको आनंद दे जाता है ।

पहला भाग पढ़नेपर पाठकोके कुछ पत्र आए । सामान्यसे 'ठीक है आनंद आया , समाधान हुआ,' ऐसाही आशय है । मेरा आनंद औरभी बढ़ता जब कोई अपना सुझाव भेजता । त्रुटिया कम होनेसे वह सुझाव कारण होता । कहते हैं ज्ञानी पुरुषका हृदय दर्पण सदृश्य होना चाहिए होनाभी है । जो किसी वस्तुको बिन दूषित किये परिवर्तित कर देता है ; आये हुए पत्रोंने परावर्तनका कार्य किया ।

शाश्वत शुद्ध तत्त्वोंको स्मरणमे रखते हुए दूसरा भाग भी पूरा हुआ । ' स्मरण ' इसलिए कहतीहूँ कि कहीं ऐसा न हों अतोत के आनंदका क्षण कर्तव्य भुला दे । ज्ञानका सागर अबाध है, मानवका कर्तव्य है अपनी अपनी अंजुलीमे उसमेसे श्रेय उपादेय जो है सो ले । शक्ति अल्प है और समय तो चलताहि रहता है; दोनोंका सुवर्णमध्य कहाँ है, यह समझना सही समझदारी है ।

पहले भागमे कुछ दोष हैं, वे दोष दुहराए नहीं जायेंगे इसपर कडी नजर रखते हुए यह दूसरा भाग सुचारु रूप लेकर आपके हाथ सोपू इसका भरसक प्रयत्न किया है ।

नय वो तराजु मान लिया गया है । ठीक है । एक पलडेमे वचन रखा जाता है दूसरेमे वस्तु । वजन कोई नहीं लेता, वस्तु लेता है , यह व्यवहार नीति है । वजन क्या है ? वजन है व्यवहारनय और वस्तु है निश्चयनय जो उपादेय है । वजन को वजन और वस्तुको वस्तु समझो कोई झगडा नहीं होगा ।

पूजक भक्त होता है , जो विकारोंसे विभक्त रहना चाहता है । परिणामस्वरूप भक्त आराध्येके चरण छू लेनेपर आचरणसे विभक्त न हो इस प्रयासमे आचार्यों ने शास्त्रोंका सृजन किया है । उन श्रेष्ठ शास्त्रोंमेसे यह चिंतन शृंखला, भावरूपी कडियोंको जोडकर बनायी है । इस शृंखलाकी एकभी कडी न टूटे , लेखकने ऐसी लेखनीको सजन रख छोडा है ।

सिद्धात्म-गुण-चिंतन-शृंखला एक ऐसी शृंखला है जो जो कर्मसे छुड़ानेवालेको बांध रखाती है और जूड़ानेवालेको मुक्त करती, है, फलस्वरूप वह अन्यत्र कहीं जा बसे ।

चिंतन छायाके समान है, जब वह ज्ञानीके आगे चलता है तो दीर्घ होता हैं और ज्ञानी आगे होता है तो चिंतन पीछेही रहात है ।

पिछली अष्टान्हिका पर्वके निमित्त 'णमोसिद्धाणं' भाग १ का प्रकाशन लघु पुस्तिकाके स्वरूप हुआ है । जिसका मूल्यांकन विद्वानोंद्वारा हुआही है ।

मुमुक्षु प्राणियोंको प्रमाद छोड़कर स्वात्मबांध लेनेमे सदैव उत्साहित रहना है । उस उत्साह को बनाये रखने मे इस पुस्तिकाका सदुपयोग हो सकेगा ऐसी आशा रखती हूं । मुझे विश्वास है कि विज्ञ स्वाध्यायप्रेमी इससे लाभान्वित होंगे ।

णमो सिद्धाणं भाग २ :

ऌही अनंत दर्शनाय नमः ।

इस संबंधमे मौलिक विवेचन आया है , उस मौलिक गुणके मालिक है सिद्ध भगवान ! अहो, अनंत दर्शनका क्या मोल करें ! आगम ग्रंथोंमे तो अनंत शब्द की मर्यादा है । अनंत क्या अर्थ होता है , कहातक होता

है । अनंतही परिसीमा परिसमाप्ति है तो फिर अनंत क्या है ? आगम ग्रंथोके दीपकसे हम अनंत दर्शन क्या है यह जान सकते है । किंतु यहां तो सिद्ध भगवानकी बात है । उनके स्वसवेदन को हम क्या जाने ? वही स्वसवेदन हमें भी हमारे निजी पुरुषार्थसे प्राप्त हो , इस इच्छाके साथ अनंत दर्शनधारी सिद्धजीओंको नमस्कार हो ।

ऌही अनंतज्ञानाय नमः ।

सिद्धोंके गुणोंका स्मरण यहां चल रहा है । यही पूजा हैं सही पूजा है । रही अनंत ज्ञानके अर्थ की बात , उसकी बताना , वही हम छद्मस्थ जीवोंके सामर्थ्यसे बाहर है । जिन ग्रंथोंमे अनंत ज्ञानका स्वरूप बताया गया है , उतना अनंत ज्ञान जानना; इससे तो अनंत ज्ञानमे भी सीमा पड़ेगी । जिसे सिमामे हम बांध सकते हैं वह अनंत कैसे ? सिद्धोंके ज्ञान की एक समयकी पर्यायमे तो अनंत सिद्ध आ जाते हैं ।

ऌही अतुलवीर्याय नमः

जब अंतराय कर्मका नाश होता है तो वीर्य गुण प्रकट होता है । किसी चीजको समझानेकेलिये हम उदाहरण देते है, दृष्टांत देते है, तुलना करते, उपमेय उपमानका प्रयोग करते है । यहां तो सिद्धोंके गुणोंकी बात है, उनकी तुलना त्रिलोकस्थित किसी वस्तुसे करना उन अलौकिक गुणोंकी योग्यता को कम करना है । अतः 'अतुल ' शब्द योग्य है । तुलना उसीकी हो सकती है जिसमें कुछ समानता हो । सिद्धोंके समान कोई नहीं, इसलिए वे अतुलवीर्य है ।

प्र.- अनंत और अतुल क्या एकही हैं ?

उ. - सिद्धोंके गुणोंकी अपेक्षा हो सकती है । केवल शब्द भेद है । जहांतक समझानेकी बात है , अनंतका अर्थ है अतरहित, मोक्ष तथा परब्रम्ह और अतुल का अर्थ हैं अप्रतिम तथा अतिशय ।

अनंत और अतुल गुणोंके नायक सिद्धोंको नमस्कार ।

न्ही अनंतसुखाय नमः

जो त्रिकाल हैं वही गुण सिद्धोंके है । आकुलताका जहां नाम नहीं, ऐसा सिद्धोंका गुण है । आकुलता यहां इस अर्थ में लेंगे कि जीवको कुछ करनेका भाव होना । आकुलता अणुमात्र भी नहीं रहना , सिद्धोंकी स्व.कुलता है । कुछ करनेका भाव तो सिद्धोंमें रचताही नहीं । क्योंकि वे कृतकृत्य होते हैं ।

संसारभर जितने मनीषि हुए हैं, सबने सुखकेसंबंधमें विचार किया है, अधिकतर लौकिक सुखोंके संबंध मेंही विचार है । अलौकिक सुख अलौकिक है । जिन्होंने सुखका लक्षण अलौकिक किया है, उन्होंनेभी सुखका जो मार्ग बताया वह मात्र लौकिक है । लौकिक मार्गसे अलौकिक सुख नहीं होता । फिरभी एक बात तो माननीहि होगी, मनीषियोंको इतनी तो बातका पता चला था कि, लौकिक सुखमें सच्चा सुख नहीं । लेकिन सबकी कल्पनाओंने सुखकी छू लिया किन्तु सुखकी आत्माको छूनेसे मतलब है , वह सुख जो निरंतर होता है ; बाहर नहीं होता; जड़में नहीं होता ।

सिद्धोंका सुख स्वाभाविक शुद्ध आत्म स्वरूपके अनुभवसे उत्पन्न होता है । वह रागादि विभावोंसे रहित होता है । कर्मजन्य नहीं होता । विकल्प रहित होता है । इन लक्षणोंको देखते हुए यह तो समझमें आही जाता है , कि केवल दुःखका अभाव होना सुख नहीं है । क्यों कि अलौकिक सुख कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न होता है तथा वह जीवका स्वभाव है, जिसे दुःखका अभाव दे नहीं सकता । केवल दुःखका अभाव सुख है ऐसा माननेसे जो रोग मुक्त हुआ रोगी है वह सुखी कहलाएगा ।

कैसा है सिद्धोंका सुख ? १) आत्मासे उत्पन्न होता है । २) विषयोंसे रहित है । ३) अनुपम ४) अनंत ५) विच्छेद रहित ६) स्वाधीन इ इ.ऐसा अलौकिक सुख सिद्धोंका है ।

सुखखी चर्चा है । लौकिक सुखकी नहीं । अलौकिक सुखकी यहां चर्चा है । लौकिक सुखकी क्यों नहीं ? थोड़ेमें कहना हो तो ऐसा कह सकते हैं कि , लौकिक सुख रुचिके आधिन है । इसीलिए तो पित्तज्वरवांलेको कुटकी हित द्रव्य है, प्यासेको ठंडा पानी सुखरूप है इ इ. । ऐसा क्यों ? मोह के कारण ऐसा होता है । एक वस्तु जिसको सुखरूप है वही वस्तु दूसरोंकोभी सुखरूप हो ऐसा नियम नहीं है । लौकिक सुखकी तुलना करनेके हेतु ,

अचार्योंने यहां तक कहा है कि, स्पर्शादिकोंसे जो सुख देवेन्द्र चक्रवर्ती वगैरहको प्राप्त होता है, जो कि श्रेष्ठ माना जाता है, सुख सिद्धोंके सुखका अनंतवा हिस्सा है । और भी कहाँ है की , तीन काल में मनुष्य, तिर्यच और देवोंकी जो सुख मिलता है वे सब मिलकर भी सिद्धोंके एक क्षणके सुख की भी बराबरी नहीं करते ।

एक मनीषीने सुख शब्दका विभाजन किया । सुख शब्दोंको उसने सु+र+व ऐसा लिखा । रव का अर्थ है आवाज । सुका अर्थ है अच्छी । सु र व का अर्थ होगा अच्छी आवाज । जड़ द्रव्यों को भोगनेसे

अच्छी आवाज नहीं आ सकती; वह तो आत्मासे आती है । (आवाजसे मतलब आस्वादसे है) सारांश यह हुआ कि वहीं सुख सुख है जिससे आत्मा का आस्वाद आता है , या यूँ कहें जो आत्मा का आस्वाद आता है वह सच्चा सुख है । सुख जो इंद्रियोंसे प्राप्त होता है उसके संबंधमें उसने अच्छा आकाश इतनाही कहा है । ख अर्थ आकाश । जिस इंद्रियका सेवन करनेसे आकाश अच्छा लगे (मन प्रसन्न हो) वह लौकिक-इंद्रियजन्य सुख है । चाह, आस्वाद और तृप्ति इनकी लौकिक सुखसे संबंध है । चाह को मर्यादा नहीं होती. आस्वाद जो लेना है, वह आस्वाद निरंतर रहे इसे इच्छासे चाहके मर्यादा नहीं होती । आस्वाद लेनेकेलिए जीव सवंशक्तीका प्रयोग करता है । किंतु आश्चर्य है कि तृप्ति कभी नहीं होती ।

लौकिक सुख अलौकिकताको तो है ही ,उस अलौकिकताको समझनेका मार्ग भी अलौकिक होना परमावश्यक है । लौकिक मार्गसे वह समझमें नहीं आ सकता ।

प्र. - अलौकिक सुख श्रेष्ठ है. कैसे ?

उ.- भोग रतिमें अन्य पदार्थोंका आश्रय लेना पड़ता है, स्वानुभवसे आत्म द्रव्यही होता है । भोगरतिसे अच्युत होनेपरभी अध्यात्म रतिसे भ्रष्ट नहीं होता, इस हेतुसेभी अलौकिक सुख श्रेष्ठ है । भोगरति विघ्नोंसे युक्त है, अध्यात्म रति विघ्नमुक्त है ।

प्र.- अलौकिक सुख कैसे प्राप्त होता है ?

उ.- वीतराग भावमें स्थिति पानेसे साम्यरसरूप अतीन्द्रिय सुखका वेदन होता है, सुख प्राप्त होता है ।

इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोगमें शोक रहित रहना चाहिए ।

शरीरादिमें आत्मबुद्धि नहीं रखना चाहिए ।

सुखकी केवल चर्चा करने से क्या लाभ ? सुखसे मतलब सच्चा सुख जो सिद्धोंने प्राप्त किया है। वह सुख अविनाशी है । सच तो यह है कि कोई विशेषणका प्रयोग करे ऐसा वह सुख हैही नहीं । क्योंकि विशेषणमें तुलना होती है या उपमा । महत्व सापेक्षतामें नहीं, निरपेक्षतामें है। सच्चा सुख तो निरपेक्ष होता है और निरपेक्ष होनेसे उसे शब्द और अर्थ की भी अपेक्षा नहीं, इसलिए शब्दोद्घारा सुखको समझाना असंभव है । फिरभी छद्मस्थ जीवोंको कैसा ? आइअ, अधिक चर्चा न हो इसलिए थोड़े शब्दोंमें कुछ प्रश्नोत्तर-

प्र - सुखका लक्षण क्या है ?

उ.- सुखका लक्षण निराकुलता है ।

प्र. - सुखको प्रत्येक प्राणीमात्र ढूँढता है, सबको सुख क्यों नहीं होता ?

उ - जहाँ सुख है वहाँ ढूँढनेसेही सुख मिलता है ।

प्र.- आपका अभिप्राय क्या है ?

उ.- अभिप्रया ऐसा है कि, सुख आत्मामे है और प्राणीमात्र ढूँढता है जड द्रव्योंमे ।

प्र.- संसारमे सुख प्राप्त करनेसे क्या सुख नहीं होता ?

उ.- नहीं, संसारमें सुखका साधन जड द्रव्य है ।

प्र.- लौकिकमे सुखोंकी सामग्री होतेहुए भी लोग सुखी क्यों नहीं ?

उ.- लोग तो सुख, सुख मानतेही नहीं ।

प्र.- ऐसा क्यों ?

उ.- आकुलता होती है, इसलिए सुख सुख नहीं होता ।

प्र.- इंद्रियोंकेबिना सुख कैसे संभव है ?

उ.- इंद्रियोंकेबिना सुख नहीं है , ऐसा मोहसे समझता है ।

प्र.- इंद्रियोंकेबिना सुख कोई सुख है ?

उ.- हां, सच्चा सुख वही है, वह स्वसंवेद्य होता है ।

प्र.- तो, इंद्रियोंसे सुख नहीं होता ?

उ.- 'यत् पटोलमपि स्वादु श्लेष्मणस्तद्विजृम्भितम्' । ऐसा शास्त्रोंमे आता है ।

ज्ही अनंत सम्यक्त्वाय नमः

सम्यक्त्व लिखनेकी , कहनेकी या बतानेकी वस्तु है ही नहीं , मात्र वह है स्वसंवेदनसन्मुख होकर कदम उठाना, चलना कहांतक ? ध्येय जहांतक । ध्येय कहाँ ? अपने पास । फिर चलना क्यों ? समझनेकी चीज है, क्या लिखें ! सम्यक्त्व तो छूटता नहीं । नहीं छूटे तो उसका अंतही कहाँ ? इसलिये तो अनंत है । चलना तो परमसमरसी भाव है । यहां तो, मार्गसे चलते श्रद्धारूप चरण, मार्ग एकमेक हुए हैं । एकमे होना तो स्वभाव है, स्वभावका कारण लिखे ? लौकिकमे तो देखा जाता है, चरण चलते हैं आगे, पीछे जाता है माग । यहां तो सम्यक्त्व मार्गभी है, चरणभी है । कौन आगे और कौन पीछे ? अनंत है अनंत !

शास्त्रोंमे आता है -

यदग्राह्यं न गृण्हाति गृहीतं नापि मुंचति ।

जानाति सर्वथा सर्व तत्स्वसवे द्यमस्म्यहं ।।

(जो आत्मासे भिन्न है , वह ग्रहण करनेयोग्य नहीं है , उसे यह कभी ग्रहण नहीं करता । जो इसका स्वभाव है, जिसे यह ग्रहण किये हुए है उसे यह कभी छोड़ता नहीं । जो सर्वका सर्वथा जानता है और स्वानुभवगम्य है वही मैं हूँ)

सम्यक्त्व तो गुण है । वह छूटता नहीं । कभी कभी लोग पूछ बैठते हैं कि, कहो पंडितजी (या महाराजीजी) क्या आपको सम्यक्त्व हो गया है ? कैसे समझाएं उन लोगोंका ! अरे भाई, सम्यक्त्व क्या बननेकी चीज है ? देखो , हम कुछ बने हैं इसलिए तो भवभवमे दुःखी है । कुछ बनना परकेआधीन होना है । सम्यक्त्व तो अणुमात्रभी परकेआधीन नहीं है, क्षमता कभी नहीं होता । इसलिए तो वह अनंत है । वही माहिमा है इस सम्यक्त्वकी । आत्मविकासके उत्कर्षका अभिनय सम्यक्त्वसेही प्रारंभ होता है । आश्चर्य नहीं है कि सम्यक्त्वसे सुरु होनेवाला अभियान सम्यक्त्वको छोड़कर पूर्ण नहीं होता । यह तो स्वभाव है । छूटता नहीं । अनंत है ।

ऌही अचलाय नमः

सिद्ध भगवान स्वभावको छोड़कर कहीं जातेही नहीं । जब सम्यक्त्वकी शांति आई तो इदम् मम / मम इदम् का कोलाहल खत्म हुआ । वैसे तो अचलका अर्थ है स्थिर, निश्चल, अंबाधित और पर्वत । सिद्ध भगवान स्वभावसे स्वभावमे स्थिर है । परभावसे निर्मित चंचलताएं वैराग्यकेपालनेमे अलाकुलताकी लोरिया सुनकर सदाकेलिए सो गई है, इसलिए वे निश्चल हैं । संपूर्ण कर्मोंका नाश होनेसे स्वभावमे विचित्रभी बाधा नहीं आसकती, इसी अपेक्षासे आबाधित हैं पर्वत तो निश्चलताका प्रतिक है । सिद्धभगवान तो केवल सिद्धही हैं और इस तरह हैं कि । उनकी तुलनामे कोई नहीं । ‘स्वेवात्मना भवनं स्वभावः’ इस व्याख्याके आधारसेभी कहना होगा कि सिद्ध भगवान अपने असाधारण स्वभावसे हुए हैं , वह स्वभाव कभी छूटता नहीं इसलिए अचल है ।

ऐसे अचल सिद्ध भगवानको त्रिवार वंदन !

ऌही अनंत सूक्ष्मत्वाया नमः ।

सिद्ध भगवानके तो अतीन्द्रिय ज्ञानका सूर्योदय सदाके लिए है । इसलिए अनंत सूक्ष्मत्व है । अतीन्द्रिय ज्ञ, न को ‘स्फुटग्’ कहा है । स्फुटमका अर्थ भ्रांतिसे रहित ज्ञान, यथार्थ है । भ्रांति तो अंधःकार है, वह अंधःकार अतीन्द्रिय ज्ञानके सामने कबतक टिक सकता हैं ? क्षणमात्रभी नहीं इसीलिए सिद्धजीवोंमे अनंत सूक्ष्मत्व है ।

ऌही अव्याबाधाय नमः

बाधा तो उन जीवोंके होती है , जो कर्मोंके चपेटमें हैं , जिनको कर्मोंने लपेट लिया है । सिद्ध भगवान तो सर्व कर्म रहित हैं, उनको बाधा कैसी ? वे स्वसंवेदन सुखमे निरंतर हैं । उस निरंतरतामे कभी अंतर नहीं आयेगा ।

ऌही अवगाहन गुणाया नमः ।

ॐ अग्रमेयाय नमः ।

हे आत्मन्, तू बड़ा भाग्यवान है, जो तू सिद्धोंके अनंत गुणोंको सून रहा है । सुनकर धुनमेही गुनगुननानेसे उन गुणोंके प्रति आकृष्ट हो जा, तुझे परमशांति मिलेगी ?

गुण किसे कहते हैं ?

जो संपूर्ण द्रव्यमे व्याप्तकर रहते हैं और समस्त पर्यायोंके साथ रहनेवाले हैं उन्हें गुण कहते हैं । कोई आश्चर्य नहीं वस्तुस्वरूपही ऐसा है उसको कौन बदले ? ।

शास्त्रोंमे आता है 'तस्मिन्नैव विवक्षित वस्तुनिमग्नाः' सारांश उसही विवक्षता वस्तुमे जो मग्न हो, वह गुण है चलो हम भी सिद्धोंके गुण चिंतनमे मग्न हो जाये ।

ॐ अजराय नमः ।

अजरका अर्थ है, तरुण अक्षय तथा दृढ़ । सिद्ध भगवान तो अनंत वीर्यधारी होते हैं; तथा जराउपाधी तो छद्मस्थ अवस्था होनेपरही होती है । सिद्ध भगवान तो मुक्त हैं । जिस कर्मके उदयसे जीवको जरा प्राप्त हाती है, वह कर्म संपूर्णतः नष्ट होनेसे सिद्ध जीव सदैव चैतन्यशाली होते हैं । यहां शंका हो सकती है कि, नित तरुण होना यह भी कर्माधीन है ?

कर्माधीनकी यह चर्चा नहीं है । निजाधिनकी स्वाश्रित बात है । सिद्ध जीवोंके सुखका क्षय-लोप नहीं होता; सुख अक्षय होता है । संभवतः कुछ कमी आसकती है ऐसी शंका नहीं होनी चाहिए । संसारी जीवोंका सुख कम होता है, क्यों कि वह सापेक्ष है, निरपेक्ष सुख तो कभी नहीं होता ।

ॐ अमराय नमः

हम उस अमरताको नमन करेंगे. जो अमरता काल मरण या अकाल मरण नष्ट नहीं कर सकती । जीवको जबतक कर्म लगे रहते हैं, तबतक जीव मरता रहता है । अमरताका मार्ग कर्म रहित सुंदर सृष्टीसेही जाता है ।

ॐ अग्रमेयाय नमः

अग्रमेयताको कैसा जाँचे ? जो वस्तु जांची जाती है उसे प्रमेय कहते हैं । सिद्ध भगवानके गुण तो अनंत हैं, उसको कैसे जांचे ? इसलिए सिद्ध भगवान अग्रमेय है ।

ॐ अतीन्द्रियज्ञानधारकाय नमः ।

'निर्व्याकुलचित्तानां पुरुषाणां सुख तदतीन्द्रियसुखम्' । ऐसा शास्त्रोंमे लिखा है । व्याकुल चित्त जीवोंका सुख केवल सुखाभास होता है; इन्द्रियोंके निमित्तसे होता है । आत्मसन्मुख रहते हुए जो सुख होता है वह अतीन्द्रिय सुखके निकट होता है । सिद्ध जीवोंका जो सुख है वह स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होता है । किसी जिज्ञासू मुमुक्षुका ज्ञान और सुख अलग अलग हो सकते हैं; इस आशंका को दूर करने लिए कहा

होगा कि, जो सुख है ज्ञानही है; क्योंकि सिद्धजोवोंके तो स्वसंवेदन प्रत्यक्षत होती है। आज कल परामनावैज्ञानिकताकी बड़ी चर्चा है। उसकोशी अतीन्द्रिय ज्ञान कहनेको वैज्ञानिक लालचित हो बैठते हैं; किन्तु मेरे विचारस उसमें अतीन्द्रियता नहीं आ सकती। व्याकुल चित्त हो और अतीन्द्रियता ही, वह तो संभव नहीं। सभवतः वह मतिज्ञान हो। मतिज्ञान की सीमा दूरतक है। उसकी सीमासे बाहर जाना परी मनोवैज्ञानिक क्या जाने? मात्र विद्यमान दृश्यमान जगसे किंचित् भिन्न कल्पानाओंके अवलंबनसे जो कुछ मिले समझे उसे अतीन्द्रिय ज्ञान कहना उचित नहीं।

जो द्रव्य कर्म भावकर्म रहित होकर परमानंद परिणत जीव है, वेही अतीन्द्रियज्ञानधारक होते हैं।

ऋही अवेदाय नमः।

जो जीव पुरुष होता है, स्त्री होता है या नपुंसक होता है। वेदनं वेद;

धवल ग्रंथमे कहा है कि आत्माकी चैतन्यरूप पर्यायमे मैथुनरूप चित्तविक्षेपके उत्पन्न होनेकी वेद कहते हैं। देखो, चित्तविक्षेप मूल है, जो जो जीवको अन्यत्र भ्रमता है। सिद्ध जीव तो निजानंद लीन हैं। उन्हें तो आत्मसुखकाही वेदन होता है। चित्तविक्षेप क्षणमात्र तथा कणमात्र भी नहीं है।

ऋही अभेदाय नमः

हम सिद्धोंके चरणोमे बैठे हैं। वे पूर्ण कलाधारी हैं। चेतना आपकी विशेषता है। उसमें भेद नहीं हो सकता। पूर्णता पूर्णतासे पूर्णता है उसमें हीन या अधीक ऐसा भेद नहीं हो सकता।

ऋही निजाधीन जिनाय नमः।

स्वामी सेवाका भाव निरंतर चला आ रहा है, कोई जीव किसीका सेवाकरता है तो वह कहता है, “मैं उनके आधीन हूँ”। पराश्रय है। आधारहीन जीव परका आश्रय लेता है। सिद्ध भगवान तो स्वयंपूर्ण हैं। किसीके आधीन रहनेकी उन्हें आवश्यकताही नहीं। उनका आधार ‘स्व’ हैं, इसिलिए वे तो ‘स्व’ के आधीन हैं। जिन हैं, तो निज के आधीन हैं।

ऋही शुद्ध चेतनाय नमः

अब शुद्ध चेतनाको नमस्कार किया है। चेताना यह लक्षण है तो चेताना मे क्या शुद्ध अशुद्ध है? ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए। चेतनामे ‘पर’ का एक कणभी उसमें नहीं समाया जाता। पुद्गलकी मायासे दूर है ए सिद्ध जीव। चेतना की प्रकर्षण बतलानेके लिए चेतनाको शुद्ध विशेषण दिया है। जो जैसा है। उसे वैसा कहनमे दोष नहीं। सिद्ध जीवोंकी चेतना शुद्ध होती है, विकाररहित होती है। चेतना तदाकार होती है। कहीं हैं, कहीं नहीं, ऐसा नहीं। निज प्रदेशमे परद्रव्य का एकभी प्रदेश आ /

जा नहीं सकता चैतन्यकी महिमा अपार है । हमारे घरमें दूसरा घुसे या हम दूसरोंके घरमें रहे यह तो संभव नहीं । क्यों ? । क्यों कि यह चैतन्य महाराजाका राज्य है ।

‘ही शुद्ध ज्ञानाय नमः

अहो, अहोभाग्य हमारा जो हम सिद्ध भगवानके गुणोंका चिंतन कर रहे हैं । ज्ञान की महिमा हैं । देखो, फिर शुद्ध विशेषण आया है । वस्तुस्वरूप को बदला नहीं जाता सिद्ध जीओंको ज्ञान शुद्ध होता है, वह वस्तु स्वरूप है । ज्ञान की बात आती है तो , अनंत का कमल पूर्ण रूपेण फूलता है । शास्त्रोंमें ज्ञानकी अनेक व्याख्याये हैं । सारांश एक जैसा होनेपर भी उनमें जो संकेत है, उसकी ओर देखना मानो नयन मनोहर सूर्योदया देखना है । ज्ञानका ध्येय क्या है ? आनंदकेसिवा क्या हो सकता है ?

‘जं जाणइ तं णाणं ’ ‘ तत्त्वार्थावबोधो ज्ञानम् ’

इन दो व्याख्याओंका देखिए । पहली व्याख्या पगडंडी है तो दूसरे नेशनल हायवे । हमें गतव्य की ओर बढ़ना है । पगडंडी हो या हायवे । व्याख्याओंमें कहीं ‘भूतार्थ प्रकाशन कहीं याथार्थ श्रद्धानुविध्दावगम’ तो कहीं ‘तत्त्वप्रकाशन’ की ओर संकेत है । एक व्याख्या ‘ज्ञान स्वार्थ निर्णयः’ भी है । ऐंसा हम अनुभव करते हैं कि , कोई उद्योगपति बड़ी इंडस्ट्री खोले, उसको इंडस्ट्रीसे कोई लेन देन नहीं, वो तो केवल Profit देखे रहा है । यह तो केवल दृष्टांत है, यहा तो स्वार्थका अर्थ, अर्थ संकोच का संकोच करता हुआ आत्मोन्मुख विस्तार करता है । सिद्ध भगवान निरंतर स्वानंदमें मग्न है, वह स्वानंदही स्वार्थ है । ऐसे शुद्ध ज्ञानधारी सिद्ध भगवानको मनवचनकायसे भावपूर्ण वंदना ।

‘ही शुद्ध चिद्रूपाय नमः

सिद्ध भगवानके सर्व गुण सिद्ध होना स्वाभाविक है । इस स्वाभाविक सूत्रको लेकर भगवान के निकट जानेका प्रबल प्रयत्न करेंगे । शुद्ध उसे कहते हैं, जो अशुद्ध न हो । व्याख्या सही होनेपरभी ठीक वही है । अंततः कुछ तो परिभाषा बनानी होगी । फिर शुद्ध की परिभाषा क्या होगी ? जिसमें मिलावट न हो वह शुद्ध । यहा तो शुद्धात्मा की चर्चा है । अतः ‘मिथ्यात्व रागादि समस्त विभाव रहितत्वेन शुद्ध’ ऐसी परिभाषा कि गयी ।

चित् और रूप ऐसे दो शब्द हैं । चित् का अर्थ है, चित् शक्ति या अनुभव । शास्त्रोंमें कहा है, अन्वित और अहंम् इस प्रकारके संवेदनके द्वारा अपने स्वरूपको प्रकाशित करनेवाले जिस रूपका सदा स्वयं अनुभव करते हैं उसीको चित् कहते हैं

रूपके संबंधमें क्वाचिच्चाक्षुषे वर्तने, क्वाचित् स्वभावे वर्तते ऐसा कहा गया है । (कहोंपर चक्षुके द्वारा ग्राह्य कहींपर रूपका अर्थस्वभाव भी है) । हमें तो केवल सिद्धोंके संबंधमें चिंतन करना है , तो अंतरंग

शुद्धात्मानुभूतिकी द्योतक निर्ग्रथ एवं निर्विकार साधुओंकी वीतराग मुद्राको रूप कहेंगे । सरल अर्थ होगा वीतराग मुद्राका अनुभव ।

ॐ शुद्ध स्वरूपाय नमः

सिद्ध जीवोंका स्वरूप तो 'स्व'रूप, उनका अपनाही होता है । पर्यायसे शुद्ध बनी रहना उनका स्वभाव है । अन्यरूप विभावरूप नहीं होना स्वरूप है । 'होना' और 'रहना' दो शुद्ध है । सिद्ध जीवाने अनंत पुरुषार्थ किये हैं, यह बतलाता है, 'होना' शब्द और कृतकृत्य बनगये हैं, और कुछ बनना नहीं है . निरंतर शुद्ध जैसा है वैसा बने रहना 'रहना' शब्द बतलाता है । सिद्ध भगवान शुद्ध रूपसे विराजते हैं ।

ॐ परमशुद्ध स्वरूप भावाय नमः ।

यंहा भव्य जीव भावको नमस्कार करता है । कैसा है वह भाव 'परम शुद्धस्वरूप' ह ! भावाय अर्थात् शुद्ध सत्तास्वरूप वस्तु है । शुद्ध सत्तारूपका अस्तित्व है । कपोसकल्पित वस्तु हैही वही । जो कोई शाश्वत वस्तुरूप है उसे नमस्कार किया है । वस्तुका अभाव हो और उसको नमस्कार करें ऐसा वही है । ... परम शब्दका अर्थ उच्च, उत्कृष्ट श्रेष्ठा, मुख्य ऐसा है । सिद्ध जीवोंकी अपेक्षा श्रेष्ठा क्या है ? सिद्ध जीव तो भावकर्मद्रव्य कर्म तथा नोकर्मसे रहित होते हैं यही उनकी उच्च, उत्कृष्ट, या श्रेष्ठा अवस्था है । उस अवस्था को नमस्कार है परम यह विशेषण है । भक्त अपने आराध्यको कभी कम नहीं समझना ।

ॐ शुद्ध दृढाय नमः ।

सिद्ध प्रभु निजानंदमे मग्न हैं, उस मग्नतासे कभी हटते नहीं । तीन कालमे भी अपने स्वभावके डिगते नहीं हटते नहीं । ऐसे दृढ हैं । चंचलताका नाम नहीं ।

प्र.- सिद्ध भगवान दृढ कहां रहते हैं ?

उ - सिद्ध भगवान अपने शुद्ध स्वरूपमें दृढ रहते हैं ।

प्र -क्या सिद्ध भगवान सिद्ध लोकमे नहीं रहते ?

उ.- हां रहते हैं, किंतु सिद्ध लोक कहीं और नहीं है ।

जब जीव कर्मलेपसे रहित होकर जहां स्वाभाविक जाता है, उसे सिद्धलोक कहते हैं । सिद्धलोक है इसलिए कर्म हित होकर जीव वहां जाता है , ऐसा नहीं ।

ॐ शुद्ध आवर्तकाय नमः ।

हिंसादिक अशुद्ध प्रवृत्तियोंसे हटना प्रशस्त समझा जाता है । इसी प्रशस्त योगको एक अवस्थासे हटकर दूसरी अवस्थामे लेंजाना आवर्त है । सिद्ध भगवान तो अयोगी है । नित्य स्वयं निज आवर्तक मे बसते हैं । सागरकी लहरें सागरके बाहर नहीं जाती । जो ऐसे सिद्ध भगवान हैं (निजमे निजका आवर्तन-आवर्त-करनेवाले) उन्हें नमस्कार है । देखो कैसी अलौकिक बात है । कहीं घूमने बाहर जाना नहीं, जान होता है तो वहभी अपने आपमे ।

ऌही शुद्ध स्वयंभवे नमः ।

हम पहलेही कहचुके हैं कि, सिद्ध भगवानके गुण शुद्ध होना स्वाभाविक हैं । आचार्य कहते हैं 'आत्मनमात्मा आत्मन्येवात्मानासौक्षणमुजनयन् सन् स्वयंभूःप्रवृत्तः ' देखो कैसी अपूर्व कला है । आत्मा स्वयं हो जाता है । आत्मा आत्माके द्वारा स्वयं हो जाता है । आत्म आत्मामे स्वयं हो जाता है । आत्मा आत्मा को एक क्षण धारण करता हुआ स्वयं हो जाता है । होता यह है कि आत्मा स्वयंही षटकारकरुण होता है

आत्मविकासकी सिढी विचरानेपर, जीवके अनादिकालसे बंधेहुए कर्माको नष्ट करना आवश्यक हैं । कर्माक नष्ट करनेके लिए सहाय्यता नहीं होती. इसी अपेक्षासे स्वयंभूपन है । द्रव्य कर्म तथा भावकर्म नष्ट होनेपर जो प्रगट होता हैं वह स्वयं होता है । वही आत्मविकास है, वही तत्त्वोंको जानता है । भगवान स्वयंभू हैं ।

परमशुद्ध ऐसे स्वयंभू शुद्ध भगवानको नमस्कार हो ।

ऌही शुद्ध योगाय नमः ।

ज्ञानसे जबतक अपूर्णता होती है , तबतक मन शंकित होताही है । मन वचन कायके परिस्पंदन को योग कहते हैं इस सक्षिप्त व्याख्याको आधार मानकर मर्म न जानते हुए कुछ लोग शंका करते हैं कि, सिद्ध अवस्थामे योग नहीं होनेपर सिद्ध जीव अभावात्मक सिद्ध होंगे । किंतु ऐसा नहीं है । आत्मस्वरूपके लाभका नाम मोक्ष है । मोक्ष शून्य अवस्था नहीं है वहां जो चैतन्य ज्ञानदर्शन होता है वह निरर्थक नहीं होता । कर्मक्षय होनेपर आत्मा अपने स्वपर प्रकाशपनेको नहीं छोडता । योगधारी सिद्ध भगवान जयलवंत हो ।

ऌही शुद्धजाताय नमः ।

ऐकेन्द्रियादिक भेद न होनेस सिद्ध भगवान शुद्ध जात है । यहां एक शंका ऐसी है कि इन्द्रियोंके अभावमे जीवका भी अभाव हो जायगा ? ऐसी शंका इष्ट नहीं । क्यों कि जीव ज्ञान स्वभावी है; इन्द्रियोंका विनाश होनेपर ज्ञानका विनाश नहीं होता । त्रिकाल अस्तिरूप रहना स्वभाव है । इस स्वाभाविक अवस्थाको नमस्कार हो । इस स्वाभाविक अवस्थाको हम प्राप्त करें ऐसी हम मंगल कामना करते हैं ।

ऌही शुध्द तपसे नमः ।

केवल इन्द्रियोंको तपाना तप नहीं है । व्याख्याएं तो खूब हैं । संक्षिप्त प्रेमी तथा विस्ताररुचि इन दो प्रकारका मनुष्यस्वभाव होता है । संक्षिप्तप्रेमी मनुष्य नय निक्षेप प्रमाणको लेकर वाद विवाद करना पसंद नहीं करता । किसी विवक्षाको लेकर अलग व्याख्या करना पसंत नहीं करता । किसी विवक्षाको लेकर अलग व्याख्या करनाभी झूट समझता । विस्तारुची मनुष्य नय प्रमाण निक्षेप आदि अनेक दृष्टियोंसे विचार करता है क्यों ? निर्णय करनेकेलिए । चर्चा करना मनोरंजनका एक क्षण-काल-हो सकता है किंतु निर्णय होना अधिक महत्व रखता है । इन दोनों प्रकारसे न विचार करना सुवर्णमध्य नहीं हो सकता फिरभी 'न अधिक न कर्म' ऐसी प्रणालि स्वीकार करते हुए कुछ व्याख्याएं नीचे दी गई हैं ।

१) कर्म निर्दहनातपः । २) कर्म तापयतीति तपः ।

३) रत्नत्रयाविर्भावामिच्छा निरोधस्तपः ।

४) समस्त रागादि परभावेच्छा त्यागेन स्वस्वरूपे प्रतपनं विजयंन तपः ।

संक्षिप्तमे इतनाही कहना है कि स्व-स्वरूप मे टिकेरहना तप है ।

सिध्द भगवान अनादि कालतक स्वरीपमे रहते हैं ।

ऌही शुध्दमूर्तये नमः ।

शब्दकोषमे मूर्तीका अर्थ है, आकारयुक्त, स्थूल पदार्थ आकृति अवतार,प्रतिमा, सौंदर्य, स्वभाव आदि । जिन कर्मोंकेबंधनसे जीवको संस्थान होता हैं, संहनन प्राप्त होता है , व कर्म तो सिध्द अवस्थामे नहीं होते । कर्मोंकेअभावमे स्वभावका तो अभाव होता नहीं । कर्मरहित अवस्थामे जो आकार चेतनामय होता है वह टंकोत्कीण होता है । शाश्वत होता है । अविनाशी होता है ।

ऌही शुध्द सुखाय नमः ।

सुखकी खूब चर्चा हमने की है । यह भी कहा है कि 'सुखकी केवल चर्चा करनेसे क्या लाभ ? (अर्थ लाभ नहीं) । अनुभव की वस्तु है । सिध्द जीव शुध्द सुखका अनुभव कर रहे हैं और करतेही रहेंगे अनंत काल तक ।

उस शाश्वत शुध्द सुखको भावपूर्ण नमस्कार ।

ऌही शुध्द पौरुषाय नमः ।

पुरुषसे पौरुष हुआ है । पुरि - आत्मनि - शेते इति पुरुषः ऐसी व्याख्या को स्वीकार करनेसे आत्मासे संबंध जुड जाता है । जड की जड उखाडनेपरही आत्माकी ओर जीव मुड जाता है । लौकिकमे तो धर्म अर्थ काम अलग अलग तीन कहलाते हैं । धर्म-अर्थ-काम धर्मार्थ काम एकही शब्द किया जाय तो काम भी धर्मका लिए सिध्द होगा । किंतु जहां पुरुषार्थ शुध्द हुआ तो केवल मोक्ष पुरुषार्थ साधलेना निज

कर्तव्य होगा । मोक्ष पुरुषार्थमे शुद्ध हुवा तो केवल मोक्ष साधलेना निज कर्तव्य होगा । मोक्ष पुरुषार्थमें क्या है ? सोचिए । केवल अनुभवरस । निरंश निरंतर सरस स्वानंद रस ।

‘ही शुद्ध शरीराय नमः ।

‘शीर्यते तत् शरीरम्’ ऐसा कहनेपर शरीरका अभाव सिद्ध होता है । सिद्ध जीव तो अमर हैं । किंचित् न्यून पुरुषाकार रहते हैं । अनंत काल । शुद्ध शरीरका अनंतकाल बने रहना शुद्ध शरीरका स्वकाल है । सिद्ध जीवोंका शरीर पुरुषांकित चेतनमय प्रदेशयुक्त है ।

‘ही शुद्ध प्रमेयाय नमः ।

जांच पडताल किससे करे । कौनसा साधन है ? त्रिलोकमे त्रिकालमे ऐसा कोई भावदंड नहीं है, जिससे सिद्ध भगवानके जांचा जाय । इस मूलभूत आधारपर अविचल रहो । जांच पडताल कौन करे ? छद्मस्थ जीव । सिद्ध जीवोंकी ज्ञान की कक्षा होगी ओर वह पराधीन ज्ञानका पक्ष लेगा । सिद्ध जीवोंका ज्ञान तो निष्पक्ष पूर्णरूपसे उत्तुंग हैं । इसिलिए सिद्ध जीव और उनके गुण केवल ज्ञानगम्य है ।

‘ही शुद्ध शुद्धोपयोगाय नमः ।

उपयोगमे शुद्धता होने चाहिए या शुद्धतामे उपयोग ? क्या इन दो प्रश्नोंका उत्तर है ? इन दो प्रश्नोंका उत्तर हो या न हो किन्तु इन दो प्रश्नोंका निर्माण एक गोरखधंधा है । ‘उवओगोणाणं दंसणं होई यह सर्व सुलभ व्याख्या है । उपयोगका चैतन्यानुविधायी होना प्रमुख लक्षण है । थोडेमे कहना हो तो यूं कह सकते हैं; चैतन्यको छोडकर अन्यत्र नहीं रहना वह परिणाम उपयोग है । उसमे परम शुद्धता शुद्धोपयोगी है । अन्यत्र नहीं रहना, स्वमे रहना । स्वपरग्रहण परिणाम उपायोगः’ स्व व परको ग्रहण करनेवाले परिणाम को उपोयग कहते हैं । जानना स्व व परको है । रहना स्व मे है ।

चैतन्यानुविधायी प्रमुख लक्षण है ,तो चैतन्यका अनुविधायी क्या है ? पदार्थ परिच्छित्तिके समय ‘यह घट’

‘यह पट है ’ उस प्रकार अर्थ ग्रहण रूपसे व्यापर करता है वह चैतन्यका अनुविधायी है । जहांतक शुद्धोपयोगका प्रश्न है, कह सकते हैं कि शुद्धोपयोग निर्मल आत्मगुणोंको स्पंदित करता है :

शुद्धोपयोगकी महिमा क्यां कहे ? एक जगह लिखा है, निश्चय रत्नत्रयात्मक था निर्मोह शुद्धात्माका संवेदन ही है लक्षण जिसका वह शुद्धोपयोग है । स्व संवेदन प्रमुख है । उसके बिना क्या है ? शुभोपयोगमे तो मोह चलता है; पुण्यानुगामि जो है । शुद्धोपयोगमे पुण्यभी कहां रहा; तो निर्मोह होनेपर संवेदनमे शुद्धात्मा होनेपर आलंबन या अवलंबन शुद्ध होता है ।

ध्येय की बात कहो तो स्व आत्मा है सो ध्येय है । संयमसे सोचो तो परम उपेक्षा संयम शुद्धोपयोग है ।

शुद्धोप-योग होनेपर जीव स्वसंवेनाय शुद्धात्मपदको परमसमरसी भावसे अनुभव करता है । क्या ? शुद्धोपयोग तो अनुभवकी बात है ।

शुद्धोपयोगकर फल समस्त दुःखोंसे रहित स्वभावने उत्पन्न और अविनाशी ऐसा ज्ञान राज्य है ।

स्वरूप यह अमृत है तो शुद्धोपयोग अमृतप्रमदायिना शक्ति है ।

अधिक क्या कहे, शुद्धोपयोग मोक्षप्राप्तीकेलिए सर्वस्व है ।

शुद्धोपयोगहीमोक्ष प्राप्तीकेलिए सर्वस्व है ।

शुद्धोपयोग मोक्षप्राप्तीकेलिए ही सर्वस्व है ।

शुद्धोपयोग मोक्षप्राप्तीकेलिए सर्वस्वही है ।

शुद्धोपयोग मोक्षप्राप्तीकेलिए सर्वस्व है ही ।

इसलिए - चलना है मुमुक्षू होकर, चढना है शुद्धीपयोगी होकर, और चखना है स्वानंदरस ।

ॠं शुद्ध भोगाय नमः ।

व्यवहार सुहृदुःखं पुग्गल कम्मफ़लं पभुंजेदि ।

आदा णिच्छयणयदो चेदणभावं खु आदस्स ।

भव्यात्मन् ! व्यवहारनयकी बात छोड. आत्मा किसको भोगता है, सोच, निश्चयनयसे सोच - आत्मा अपने चेतन भावको भोगता है । व्यवहार हार जाता है, निश्चयनय जीना जीता हैं, लक्षको पहुंचनेतक । कर्ता भोक्ता किसे कहते है ? अर्थात् जो स्वतंत्रपने करे भोग उसको । आत्माको स्वातंत्र्य किसका ? अर्थात् अपने चेतन भावको भोगनेका । स्वातंत्र्य होता है सा स्वरूपभूत होता है; तथा ऐसा स्वातंत्र्य होनेपर जो सुखकी उपलब्धी हो वह भोक्तृत्व है । पारतंत्र्यसे भवसागर पार नहीं होता । वह तो स्वातंत्र्यकी महिमा है की जीवका भवसागर पार कर दे । अधिक कहनेसे क्या ? जैसे दरिद्र पुरुष विधिकी पाकर एकांतमे (गुप्तपनेसे) उसेक फलको भोगता है उसी प्रकार ज्ञानी परजनोंके समूहको छोडकर ज्ञाननिधीको भोगता है । कोई शंका करे कि पहले तो अपने चेतनभावक बात करी और अब ज्ञान निधीकी, ऐसा क्यों ? तो कहना होगा कि , चेतनभाव और ज्ञानसे अलग ऐसा त्रिकाल संभव नहीं । चैतन्य और ज्ञान व्याप्य है, अलग अलग नहीं ।

ॠं शुद्धावलोकाय नमः ।

अवलोकका अर्थ है देखना । क्या देखना ? यही देखना है कि क्या देखना उपादेय है । अवलोकन कहो, देखना कहो या दर्शन कहो, एकही बात है । चेतनाका निजी प्रतीभास दर्शन है । निजी

प्रतिभास कहां से आया । अरे भाई जहासे चेतन आया वहांसे निजी प्रतिभास आया । चेतन तो है ही है, सदा सर्वदा किंतु उसका प्रतिभास आवश्यक है । प्रतिभास पर भावोंमे लुप्त हो गया है उसको निकालना है वही अवलोकन है । यह निजी प्रतिभास निर्विकल्प होता है । यहांतो कहा है -

निर्ममत्व युगपत लखो, तुम सब लोकलोक ।

शुद्धज्ञान सुमको लखो, नमों शुद्ध अवलोक ॥

ऋं अर्हं प्रज्वलितशुक्लध्यानाग्निजिनाय नमः ।

भो आत्मन् जरा सोच ध्यानाको अग्नि कहा है, क्यों ? व्यवहारमे देखो, जितनी आवश्यकता हो उतनी मात्रामे अग्नीका उपयोग करो सुखकारक है और अनावश्यक उपयोग घातक है । उपयोग कैसा किया जाय, कितना किया जाय यह तो विवेक है । पर ध्यानकी बात उलटी है, अलौकिक है । कैसी ?

ध्यान करो, प्रकाशित हो उठेगी, ध्यान करो कर्म काष्ट जल जायेंगे । तो क्या ध्यानमें विवेक नहीं होता ? भाई ऐसी बात नहीं है । उसमे विवेककी बात पहिलेही ही चुकी होती है । जब मुमुक्षु विवेकसे उपर उठता है तो ध्यान होता है । विवेक की अगली सीढ़ीका नाम ध्यान है :

यहां तो सिद्धों की बात है , शुक्ल ध्यान की चर्चा है ।

सच कहो तो शुक्ल ध्यान निष्क्रिय है । कैसे ? 'मैं ध्यान करूँ' इस प्रकारके ध्यान की धारणासे रहित है । ध्यानमे इन्द्रियातोत अवस्था होती है जिससे चित्त अंतर्मुख होता है । कहा भी है -

अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवे ज्झाणं ।

(आत्मा निजात्मासे तल्लीन होकर स्थिर हो जावे, आत्मामे लीन होनोही परम ध्यान है ।)

आत्मामे तल्लीन होना कैसे होता है ? सोचनेकी बात है । शास्त्रोंमे आता है, 'कुछभी चेष्टा मत कर, कुछभी मत बोल ओर कुछभी चिंतन मत कर जिससे आत्मामे आत्मा स्थिर हो स्थिर होनेपर निरंजन निज परमतत्त्वमे अविजल स्थिति होती है । जब जीव रागादि विकल्पसे रहित होता है तो अविचल स्थिति होती है । इस स्थितीमे स्व सवेदन है । यह स्वसंवेदनी आत्मामे तल्लीन होना है । सिद्ध जोवांको शुद्ध आत्मा स्वसंवेदन प्रत्यक्ष है ।

सिद्ध जीवोंको त्रिवार त्रिप्रकारेण नमोस्तु ।

श्री १०० श्री सिद्धचक्रविधान महिमा स्तुति

श्री सिद्धचक्रका पाठ । करो करो दिन आठ ॥

ठाठ से प्राणी । फल पायो मैना रानी ॥ टेक ॥

मैनासुंदरी इकनारी थी, कोढी पति लखि दुखियारी थी,

नही पडे चैन दिनरैन । व्यथित आकुलानी - । । पल पायो ॥

जो पति का कष्ट मिटाऊंगी तो उभय लोक सुख पाऊंगी,
नहि अजागलस्तनवत । निष्फल जिंदगानी । ॥ फल पायो ॥
इक दिवस गई जिन मंदिरमे, दर्शन कर अति हर्षी उरमें,
फिर लख साधु निर्ग्रन्थ । दिगम्बर ज्ञानी । ॥ फल पायो ॥
बैठे मुनि को करि नमस्कार, निज निंदा करती बार बार,
भरि अश्रु नयन कहि मुनि सों । दुखद कहानी । ॥ फल पायो ॥
बोले मुनि पुत्री धैर्य धरो श्री सिद्धचक्र का पाठ करो ,
नहि रहे कुष्टकी तन में । नाम निशानी । ॥ फल पायो ॥
सुनि साधु वचन हर्षी मैना , नहि होय झूट मुनिके बैना ,
करके श्रद्धा श्री सिद्धचक्र की ठानी ॥ फल पायो ॥
जब पर्व अठाई आया है उत्सवयुत पाठ कराया है,
सबके तनको छिडका यंत्र न्हवनका पानी ॥ फल पायो ॥
गन्धोदक छिडकत वसु दिन में , नहि रहा कुष्ट किंचित् तन में ,
भई सात शतक की काया स्वर्ण समानी ॥ फल पायो ॥
भव भोग भोगि धोंगेश भये श्रीपाल कर्म हन मोक्ष गये
दूजे भव मैना पावे राजधानी ॥ फल पायो ॥
जो पाठ करे मन वच तन से । वे छूटि जाय भवबन्धनेस ,
“ मख्खन मत करो विकल्प कहा जिनवाणी ॥ फल पायो ॥

श्री सिद्धचक्र की आरती

जय सिद्धचक्रदेवा जय सिद्धचक्रदेवा,
करत तुम्हारी निशदिन मन से सुरनर मुनिसेवा । जय ।
ज्ञानावर्ण दर्शनावरणी मोह अंतराया,
नाम गोत्र वेदनी आयुको नाशि मोक्ष पाया । १ ।
ज्ञान अनंत अनंत दर्श सुख बल अनंतधारी ,
अव्याबाध अमूर्ति अगुरुलघु अवगाहन धारी । जय ॥ २ ॥
तुम शरीर शुद्धिं मूर्ति स्वातम रस भोगी ।
तुम्हे जपे आचार्योपाध्याय सर्व साधुयोगी । जय । ३ ।
ब्रम्हा, विष्णू, महेश, सुरेश गणेश तुम्हे घ्यावे ,

भविष्यति तुम चरणाम्बुज सेवत निर्भयपर पावे । जय । ४ ।
संकट तारण अधम उधारण भवसागर तरणा,
अष्ट दुष्ट रिपु कर्म नष्ट करि जन्म मरण हरना । जय । ५ ।
दीन दुःखी असमर्थ दरिद्री निर्धन तन रोगी,
सिद्धचक्रको ध्याय भमे ते सुरनर सुखी भोगी । जय । ६ ।
डाकीनी शाकिनी भूत पिशाचिनी व्यंतर उपसर्गा,
नाम लेत भगि जाय छिन कर्म सब देवी दुर्गा । जय । ७ ।
बन रन शत्रु अग्नि जल पर्वत विषधर पंचानन,
मिटे सकल भय कष्ट करै चे सिद्धचक्रसुमिरन । जय । ८ ।
मैनासुंदरि कियो पाठ यह पर्व अठाशनिमे ,
पतियुत सात शतक कोठिन का गया दिन कुष्ट छिनमे । जय । ९ ।
कार्तिक फागुन सोढ आठ दिन सिद्धचक्रपूजा ,
करे शुद्धं भावों सें मख्खन लहै न भवइजा

। जय सिद्धचक्रदेवा । १० ।